वेदान्त छन्दावली

पाँचवाँ भाग

श्रुति की पुकार

लेखक :

श्री स्वामी भोले बाबा जी

प्रकाशक :-

जनता पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलाँ-देहली

वेदान्त चर्चा कर नित्य "भोला"!
एकत्व करले दृढ़ ठोस गोला॥
दे तोड़ 'मायागढ़' मात्र गोला।
सार्थक्य होवे नर दिव्य चाला॥

भोला

प्रकाशक :-
जगत पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां-देहली
अध्यक्ष—
लक्ष्मीचन्द, वायला

मूल्य ।।) आठ आना
प्रथम वार ।
अक्तूबर १६५४

मुद्रक—
यादव प्रिंटिंग प्रेस,
सीताराम बाजार, देहली।

ॐ

निवेदन

सब कार्य करते हुए भी तत्त्वज्ञ अकर्ता ही रहता है, क्योंकि अब उसे देह में और देह के कार्य में कर्तृत्व का अभिमान नहीं होता। अब वह कुछ कार्य नहीं करता, उसका देह ही कार्य करता है। जैसे दूसरे के किये हुए देह के कार्य से दूसरा कोई भियाय-मान नहीं होता, उसी प्रकार अपने किये हुए देह के कार्य से तत्वज्ञ भियायमान नहीं होता, क्योंकि अब तत्वज्ञ देह नहीं है किन्तु देह से भिन्न है। यथार्थ तो सब ही देह से भिन्न है, तो भी ज्ञाता-ज्ञेय रूप देही और देह को अपनी आत्मा अनात्मा का विवेक न होने से अविवेकी देह से भिन्न होते हुए भी आपको अभिन्न मानता है, इसलिये बंधन का अनुभव करता है, और विवेकी आपको और देह को भिन्न मानता है, इसलिए जीवन्मुक्ति के आनन्द का अनु-भव करता है। मुमुक्षु को चाहिये उपरोक्त भाषण वाले अभ्यास और वैराग्य का नित्य निरन्तर चिरकाल तक जब तक सिद्धि न हो प्रयत्न करे। प्रमाण से भी इनका त्याग न करे, क्योंकि संसार से मुक्त करने के ये दो ही कारण हैं। कारण बिना कार्य सिद्ध नहीं होता इसी प्रकार इनके बिना ज्ञान और मोक्ष सिद्ध नहीं होता।

॥ इति ॥

सकलचराचरानुचर "भोला"

पद्य-सूची

❀ ओ३म् ❀

वेदान्त-छन्दावली पाँचवाँ भाग

श्रुति की पुकार

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(१)

लक्ष्मीकौस्तुभवक्षसं मुररिपुं शंखासिकौमोदकी-
हस्तं पद्मपलाशताम्रनयनं पीताम्बरं शार्ङ्गिणम् ।
मेघश्याममुदारपीवरचतुर्बाहुं प्रधानात्परम् ,
श्रीवत्सांकमनाथनाथममृतं वन्दे मुकुन्दं परम् ॥

(२)

योलक्ष्यानिखिलानुपद्यविबुधानेकोवृतःस्वेच्छया,
यः सर्वान्स्मृतमात्र एव सततं सर्वात्मना रक्षति ।
यश्चक्रेण निकृत्य नक्रमकरोन्मुक्तं महाकुञ्जरं,
द्वेषेणापि ददाति यो निजपदं तस्मै नमो विष्णवे ॥

(३)

मेघश्यामं निरवधिरसं पीतवासो दधानम् ,
कान्त्याक्रान्तं त्रिभुवनवपुर्ध्येयपादारविन्दम् ।
सत्यज्ञानामितसुखमवाग्गोचरं बुद्ध्यतीतं,
भक्तया सिद्धयै स्वमपि कलयेश्रीमुकुन्दं स्मितास्यम् ॥

वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ।

(१)

सदा सिद्ध योगी धरें ध्यान जाका ।
अमानी विरागी लहें ज्ञान जाका ॥
जिसे वेद वाणी सदा गा रही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(२)

जिसे पूजते भोग के हेतु कर्मी ।
जिसे पूजके पांय ऐश्वर्य धर्मी ॥
जिसे जानता एक तत्त्वज्ञ ही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(३)

जिसे यज्ञ दानादि से पूजते हैं ।
जिसे ढूंढते तीर्थ में घूमते हैं ॥
जिसे जानने भक्ति श्रद्धा कही है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(४)

नहीं आदि ना मध्य, ना अन्त जाका ।
उजाला सभी विश्व में व्याप्त जाका ॥
जहां सृष्टि अज्ञान से भासती है ।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है ॥

(५)

सुना देख भी सो कहा जाय नाहीं ।
जिसे देख द्रष्टा रहे भिन्न नाहीं ॥
जिसे पाय के शेष पाना नहीं है।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है॥

(६)

नहीं जन्म लेवे मरे भी नहीं है।
यहां भी वहां भी वही एक ही है ॥
घनी दूर जो पास से पास भी है।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है॥

(७)

महादेव जी सर्व का ही पिता है।
सभी विश्व जा देव में भासता है॥
जहां बुद्धि जाके विला जावती है।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है॥

(८)

जिसे शास्त्र बेमाप का हैं बताते ।
जिसे विष्णु का धाम है वेद गाते॥
प्रमाता सभी का स्वयं सिद्ध ही है।
वही सच्चिदानन्द आत्मा तुही है॥

प्रार्थना ।

(१)

हैं रोग लाखों तन को गलाते ।
कामादि हैं चित्त सदा जलाते ॥
हैं मृत्यु से भी भय भीत भारी ।
हे ईश ! रक्षा करिये हमारी ॥

(२)

है छीजता नित्य शरीर रोगी।
है खेद देता मन मूढ़ भोगी ॥
बुद्धि हुई है अति ही विकारी ।
हे राम ! रक्षा करिये हमारी ॥

(३)

आयू लगा पंख उड़े सदा है।
आता जरा यौवन भागता है ॥
वारंट कीन्हा यमराज जारी ।
हे कृष्ण ! रक्षा करिये हमारी ॥

(४)

सत्संग में चित्त नहीं लगाया।
ना भक्ति भायी नहिं योग भाया ॥
आयू वृथा भोगन में गुजारी।
मायेश ! रक्षा करिये हमारी ॥

(५)

ईर्षा तजी ना, समता भजी ना।
निर्द्वन्द्वता में नहिं चित्त दीना ॥
सन्तोष त्यागा नहिं शान्ति धारी।
योगेश ! रक्षा करिये हमारी ॥

(६)

कीन्हा नहीं प्यार सुखी जनों पे।
ना की दया दीन दुःखी जनों पे ॥
त्यागी शुभेच्छा मुदिता विसारी।
हे देव ! रक्षा करिये हमारी ॥

(७)

नेत्रादि दौड़ें नित वाह्य ही हैं।
अन्तर्मुखी होंय नहीं कभी हैं ॥
हे नाथ कैसे फिर हों सुखारी।
विश्वेश ! रक्षा करिये हमारी ॥

(८)

सेवा गुरू की नर जो करें हैं।
वे ज्ञान पाके भव से तरें हैं ॥
कैसे करें सो तन के पुजारी।
मोक्षेश ! रक्षा करिये हमारी ॥

तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है।

(१)

चिल्लाया अज्ञ दुःखसे सुख पूर्ण ज्ञानी।
ना दुःख वास्तविक केवल है कहानी॥
भासे न एक सम जो दुःख तो कहा है।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है॥

(२)

संसार चक्र सम घूमत है सदाई।
आई अभी सुवह है, फिर सांझ आई॥
स्वाभाविकीय जग में दुःख लापता है।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है॥

(३)

ना वाह्य है, न मनमें, निज अन्यमें ना।
ना दुःख है विषय मांहि, अभावमें ना॥
ना दुःख, नारि, धन, योग, वियोग का है।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है॥

(४)

आकार है न दुःख का नहिं जन्म होई।
माता पिता न दुःख दें नहिं अन्य कोई॥
तू खोज तो तनिक दुःख रहै कहां है।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है॥

(५)

शास्त्रादि दुःख जगमें बतलांय हैं क्यों ।
कैसे निवृत्त दुःख हो, न लखांयहैं क्यों ॥
तू दुःख है पकड़ता दुःख यों कहा है ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ॥

(६)

आये सभी जगत में करने तमाशा ।
सच्चा उसे समझ होय रहे हिरासा ॥
जो स्वांग मानि करिये दुःख ना जराहै ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ॥

(७)

चैतन्य में न दुःख ना जड़ में बने है ।
तीजा सिवाय इनके नहिं विश्व में है ॥
तू ही बता किधर दुःख रहे कहां है ।
तेरा अबोध तुझको दुःख दे रहा है ॥

(८)

नाशी प्रशान्ति भ्रमसे दुःख भासता है ।
भोला ! कृपा गुरूनसे दुःख नाशता है ॥
भासे स्वरूप अपना दुःख भाग जाता ।
आनन्द सिंधु जगमें परिपूर्ण पाता ॥

तृप्ति ।

(१)

हजारों सुनी मैं कहानी सुवानी ।
सुनी सैकड़ों ही कथायें पुरानी ॥
किसी की बुराई किसी की भलाई ।
सुनी नित्य, तो भी नहीं तृप्ति पाई ।

(२)

सदा मंच पे नर्म गद्दे बिछाये ।
किया प्यार बच्चे गले से लगाये ॥
रहा धारता पुष्प माला सदाई ।
नहीं स्पर्श से आज लों तृप्ति पाई ॥

(३)

अनेकों तमाशे लिये देख आंखों ।
अनोखीं अनोखीं लखीं वस्तु लाखों ॥
लई सुन्दरीं देख देवांगनो सी ।
नहीं देखने की अभी चाह नाशी ॥

(४)

अलोनी सलोंनी खटाई मिठाई ।
रसीली तथा चर्परी नित्य खाई ॥
नहीं स्वाद जिह्वा सके है बताई ।
अभी लों नहीं जीभ खाते अघाई ॥

(५)

जुही मालती आदि सूँघा किया मैं।
मिला केवड़ा नीर पीता रहा मैं॥
लगा वस्त्र में इत्र आनन्द लूटा।
नहीं सूंघने का अभी प्रेम छूटा॥

(६)

सुने से छुए से तथा देखने से।
नहीं तृप्ति हो चाखने सूंघने से॥
नहीं भोग भोगे कभी तृप्ति होई।
जिमे भोग लो दुःख दे नित्य सोई॥

(७)

सदा दुःख दें तुच्छ हैं भोग पांचों।
रहें मारते भोग है रोग पांचों॥
निजात्मा सुधा सिंधु से तृप्ति कर्ता।
परा शान्ति दाता तिहू ताप हर्ता॥

(८)

सभी का वही तत्त्व है साथ ही है।
उसे दूर लेने न जाना कहीं है॥
हटा वाह्य से वृत्ति अन्तर्मुखी हो।
तभी होय संतृप्त, भोला! सुखी हो॥

कामादि की दुर्दशा ।

(१)

अरे काम ! तू खिन्न क्यों है बता रे ।
गर्म ज्येष्ठ की क्या तुझे लू सता रे ॥
नहीं पूर्व का रंग ना रूप ही है ।
न खेले, न कूदे, हंसे भी नहीं है ॥

(२)

अरे क्रोध ! तू भी पड़ा सो रहा सा ।
न भाजे न दौड़े, हुआ है मरा सा ॥
जचे है हमें सर्प से तू डसा सा ।
बता सोच क्या, क्यों हुआ है हिरासा ॥

(३)

अरे लोभ ! तू भी गया सूखा स है ।
बड़ा पेट छोटा हुआ, भों ठसा है ॥
बता तो सही मित्र ! क्यों रो रहा है ।
गिरी ओस है या कि पाला पड़ा है ॥

(४)

सदा धूम तीनों मचाते रहे थे ।
कभी कूदते थे, कभी फांदते थे ॥
हुए आज तीनों महा दीन ऐसे ।
बिना मां, बिना बाप के बाल जैसे ॥

(५)

बड़े प्रेम से मां हमें थी खिलाती।
करे प्यार थी लाड़ भी थी लड़ाती॥
हमें छोड़ के सो कहीं है पलायी।
उसी से हुए हैं दुःखी दीन भाई॥

(६)

हमारे पिता ने वधू की नयी है।
खिलाती पिलाती हमें सो नहीं है॥
कभी मांगते तो दिखा दांत देती॥
कर जिद्द तो पेट में लात देती॥

(७)

इसी से हमारी हुई दुर्दशा है।
पिता भी हमें द्वेप से देखता है॥
नहीं होयगी जो हमारी सुनायी।
चले जांयगे छोड़ के गेह भाई॥

(८)

अविद्या गयी प्राप्त विद्या भई है।
तभी ते त्रयी की दशा ये हुई है॥
न कामादि में राग भोला! करे है।
निजानन्द में तृप्त बैठा रहे है॥

क्यों सो रहा है ?

(१)

सभी ठौर व्यभित्सता छा रही है।
मरी ही मरी दृष्टि में आ रही है॥
मरे एक है दूसरा रो रहा है।
नहीं चेतता मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(२)

अरे यात्रि ! डेरा किया मार्ग तेने।
जहाँ चोर डाकू फिरे लूट लेने॥
नहीं होश बेहोश क्यों हो रहा है।
पड़ा नींद में मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(३)

नहीं बास यां सज्जनों का कहीं है।
यहां सोवने में भलाई नहीं है॥
पड़ा नींद में शक्ति क्यों खो रहा है।
अरे जाग जा मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(४)

सवेरे हि पादादि शक्ति बिना हो।
नहीं चालना, हालना, बोलना हो॥
गला कीमती देह को क्यों रहा है।
बजे चार हैं मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(५)

पशू , पच्छि, चैतन्य हो बोलते हैं।
चलें हैं, फिरें, मौज से डोलते हैं॥
जगे सर्व तू आंख मींचे हुआ है।
उठे क्यों नहीं मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(६)

गया माल सारा, कुटम्बी गये हैं।
रहेगा न तू भी, सभी जा रहे हैं॥
न तोशा लिया है, न साथी किया है।
पड़ा ओंघता मूढ़ ! क्यों सो रहा है॥

(७)

नहीं पुत्र ना पौत्र ही काम देगा।
न सम्बन्धि ही साथ कोई चलेगा॥
सगे बांधवों में बंधा क्यों हुआ है।
अरे ! त्याग अज्ञान क्यों सो रहा है॥

(८)

सुना वाक्य सत्शास्त्र का सद्गुरू का।
लिये वाक्य वेही, बना ठोस नौका॥
कृपा कीनि, आत्मादि साथी किया है।
जगा पार संसार से हो रहा है॥

धन्य जीव।

(१)

करे सैर संसार वाड़ी सदा ही।
छुये फूल नाहीं नहीं तोड़ता ही।
सदा पुष्प की गन्ध हीं लेय है जो।
वही जीव है धन्य ऐसे रहे जो॥

(२)

जगत् वाटिका सैर के हेतु जाने।
सदा सैर ही मात्र में मोद माने॥
बनाना यहाँ धाम नाहीं चहे जो।
वही जीव है धन्य ऐसे रहे जो॥

(३)

जगत् में फिरे सर्व चेष्टा करे है।
निरालम्ब तो भी सदा ही रहे है॥
तमाशा गिने मृत्यु औ जन्म दोऊ।
वही जीव है धन्य, ना अन्य कोऊ॥

(४)

नहीं अन्य बांधे बंधे आप ही है।
दुःखी भी सुखी भी करे चित्त ही है॥
नहीं चित्त के होय स्वाधीन जोई।
वही जीव है धन्य ना अन्य कोई॥

(५)

मदारी हजारों तमाशे करे है।
न मोहे स्वयं अन्य कूं मोहि दे है॥
मदारी बना देखता जो तमाशा।
वही धन्य ज्ञानी अमानी निराशा॥

(६)

जगत् के नियंता महादेव जैसे।
अधिष्ठा न व्यक्तित्व का जीव तैसे॥
न कर्ता न भोक्ता बने धीर जोई।
स्वयं शुद्ध जाने महा धन्य सोई॥

(७)

चले चक्र ही है धुरी नाहिं हाले।
चले चक्र संसार ना ईश चाले॥
छुटे चक्र से ईश का ले सहारा।
वही धन्य है जीव ब्रह्मादि प्यारा॥

(८)

रमे आप मांही सुखी आप मांही।
सिवा आपके भाव ही अन्य नांही॥
टिका आत्म के मांहि संतुष्ट जो है।
महा धन्य है सर्व से श्रेष्ठ सो है॥

प्रचण्ड अज्ञान

(१)

सोही मरा जो नहिं आत्म जाना।
सोही मरा जो तनु आप माना॥
सोही मरा जो भव में भुलाया।
प्रचण्ड अज्ञान यही कहाया॥

(२)

ऐश्वर्य चाहा जिसने यहां का।
सो दीन हो दास यहां वहां का॥
मैं मोर तेरा करि ख्वार होई।
प्रचण्ड अज्ञान कहाय सोई॥

(३)

मनुष्य काया बड़ पुण्य पाई।
पापिष्ट सो भोगन में गुमाई॥
संसार मांही घर है बनाया।
प्रचण्ड अज्ञान यही कहाया॥

(४)

जाने मरूंगा फिर भी डरे है।
नाहीं मरूं चाह किया करे है॥
सांचा कभी यत्न करे नहीं है।
प्रचण्ड अज्ञान कहा यही है॥

(५)

संसार सच्चा नहिं ईश कोई।
ऐसा कहे है मतिमन्द सोई॥
झूठा स्वयं हो भटके सदाई।
प्रचंड अज्ञान यही कहाई॥

(६)

जो नारि से हो पुनि नारि मांहीं।
जाना चहेता सम मूढ़ नांहीं॥
कामी पराधीन तजे न नारी।
प्रचंड अज्ञान सके न टारी॥

(७)

हो आंख वाला बनि अन्ध जावे।
तो ठोकरें लाखन क्यों न खावे॥
गिरा करे है नहीं चेतता है।
प्रचंड अज्ञान यही कहा है॥

(८)

कल्याण अर्थी तजि भोग देवे।
सांचे हितैषी श्रुति संत सेवे॥
जीवे सदा ही भव पार जावे।
भोला ! निष्कंटक राज्य पावे॥

नमस्कार ।

(१)

अहंकार किंचित् बना है जहां लौं ।
नमस्कार पूरा नहीं हो वहां लौं ।।
अहंकार दे मेट ओंकार होई ।
नमस्कार पूरा कहैं सुज्ञ सोई ।।

(२)

जहाँ लौं रहे लेश मैं और मेरा ।
मृषा है नमस्कार हे भक्त ! तेरा ।।
'न मैं हो न मेरा' नहीं अन्य होई ।
नमस्कार सच्चा कहा जाय सोई ।।

(३)

नमस्कार क्या है दुई को मिटाना ।
मिटा द्वैत अद्वैत माहीं समाना ।।
मिटा आपको आप ही होय जाना ।
नमस्कार अत्यन्त ही है सुहाना ।।

(४)

जहां देह होवे तहां दुःख भासे ।
न हो देह तो सर्वथा दुःख नासे ।।
करे आप को देह से धीर न्यारा ।
नमस्कार का अर्थ सोही विचारा ।।

(५)

नहीं ज्ञान है लेश भी बुद्धि मांहीं।
कभी आत्म में लेश संसार नांही॥
तजे बुद्धि योगी, भजे बुद्धि साक्षी।
नमस्कार ऐसा करे श्रेय कांक्षी॥

(६)

नहीं जीव, ना ईश, ना विश्व ही है।
न ब्रह्मा, नहीं विष्णु, ना रुद्र ही है॥
सदानन्द, कूटस्थ, चिन्मात्र ही है।
नमस्कार पूरा हुआ आज ही है॥

(७)

नमस्कार सौ बार हो द्वैत माहीं।
नहीं एक भी बार अद्वैत माहीं॥
जहाँ एक ही पूर्ण दूजा नहीं है।
वहां कौन भर कर तो मौन ही है॥

(८)

सदानन्द है आप चिन्मात्र चोखा।
'मरू वारि ज्यों' अन्य है मात्र धोखा॥
विला जाय चिन्मात्र में अन्य झूंठा।
नमस्कार भोला! सभी से अनूठा॥

वेदान्त चर्चा ।

(१)

वेदान्त चर्चा सुख कारिणी है।
विज्ञान दाता तम हारिणी है ॥
वैराग्य नौका भव तारिणी है।
'रागादि' शत्रून निवारिणी है ॥

(२)

वेदान्त चर्चा समता सिखाती।
मेटे अहन्ता ममता छुड़ाती ॥
सन्तोष पीयूष सदा पिलाती।
तृष्णा दुराशा जड़ता मिटाती ॥

(३)

वेदान्त चर्चा करते कराते।
संसार सिंधू तरते तराते ॥
श्रेयाभिलाषी सुनते सुनाते।
आनन्द से जीवन हैं बिताते ॥

(४)

वेदान्त चर्चा करिये सदा ही।
ना अन्य चर्चा करिये कदा ही ॥
वेदान्त चर्चा जिनको सुहाई।
सन्ताप नाशा सुख शान्ति पाई ॥

(५)

जो भेद देखें भय युक्त होते।
एकत्व दर्शी भय मुक्त होते॥
वेदान्त चर्चा सुन मित्र लीजे।
एकत्व माहीं मन बुद्धि दीजे॥

(६)

जो दीखता है सब ब्रह्म ही है।
ना अन्य कोई शिव एक ही है॥
सो तत्व तेरा तज भेद देरे।
वेदान्त चर्चा कर 'शान्ति लेरे'॥

(७)

ना सवर्ण से हैं 'कटकादि' न्यारे।
है मृतिका के 'घट आदि' सारे॥
वेदान्त चर्चा भ्रम भेद खोवे।
अद्वैत दर्शी सुख नींद सोवे॥

(८)

वेदान्त चर्चा कर नित्य भोला।
एकत्व करले दृढ़ ठोस गोला॥
दे तोड़ 'माया गढ' मात्र पोला।
सार्थक्य होवे नर दिव्य चोला॥

संसार तमाशा ।

(१)

सँसार है नाटक का तमाशा ।
कीजे खुशी से तज सर्व आशा ॥
अच्छा तमाशा अथवा बुरा है ।
टोटा नफा ना कुछ पात्र का है ॥

(२)

आया यहां हूं करने तमाशा ।
जो जानता सो नहिं हो हिरासा ॥
जो भूल जाता सुख सो न पाता ।
आनन्द जाता दुःख हाथ आता ॥

(३)

कीजे तमाशा करिये न आशा ।
है व्यर्थ आशा जब है तमाशा ॥
तृष्णा किला जो चुनता रहेगा ।
माथा सदा सो धुनता रहेगा ॥

(४)

हैं आज ठैरे, उठ कल्ल जाना ।
ऐसी सरा में मन क्यों लगाना ॥
हैं आज आये, कल राह लेंगे ।
ऐसे विदेशी कब साथ देंगे ॥

(५)

जो देह लाखों ज्वर से भरा है।
आसक्त होना उसमें बरा है॥
आसक्तियायें तज मित्र दीजे।
पाओ न दूजी असयत्न काजे॥

(६)

डाकू लुटेरे बसते जहां हैं।
वा ग्राम में खैर भला कहां है॥
दीखें हित् ऊपर देखने में।
सच्चे सयाने धन लूटने में॥

(७)

जो भोग आवे सब भोग लीजे।
आगे न हो दुःख उपाय कीजे॥
संसार से चित्त हटाय दीजे।
अन्तर्मुखी वृत्ति बनाय लीजे॥

(८)

जो प्राप्त हो ईश प्रशाद जानी।
लो भोग आनन्द विनोद मानी॥
भोला ! जगत में दुःख ना उठाओ।
आत्म निहारो सुख शांति पाओ॥

क्रोध ।

(१)

अरे क्रोध ! ब्रह्मांड मांही बसैया !
पिता कामना, विघ्न सम्मोह भैया !!
प्रचंडाग्नि गुप्ताग्नि छाती जलैया !
रजो, तामसी भूमि गाढ़ा सुनैया !!

(२)

जहां जोश में क्रोध ! आ जाय है तू !
भुला आपको अन्य को देय है तू !!
बने क्रूर पूरा भुजा शस्त्र धारे !
नहीं लेश चिन्ता मरे या कि मारे !!

(३)

अरे क्रोध ! रक्तादि पीता सुखाता !
इसी में तुझे स्वाद है दुष्ट ! आता !!
भरे कंठ लौं पेट हो पूर्ण ज्योंही !
गिरे आप ही होय बेहोश त्योंही !!

(४)

अरे क्रोध ! ज्यों चाप से बाण धाई !
पृथक् होय के दूर जावे पराई !!
इसी भांति से ही उठे वेग से तू !
करे है पृथक् आपको देह से तू !!

(५)

अरे क्रोध ! तू भ्रष्ट बुद्धि करे है !
करे अन्ध है ज्ञान सम्यक हरे है !!
भरे प्रेत आवेश से देह जैसे !
इसी भांति तू देह मांही प्रवेशे !!

(६)

अरे क्रोध ! देवादि दैत्यादि मारे !
ऋषि औ मुनि सर्व तूने पछारे !!
जहां तू रहे है नहीं शान्ति आती !
नहीं अग्नि के पास ज्यों ठंड जाती !!

(७)

पिता काम तेरा ! न नाशे जहां लों !
नहीं क्रोध अज्ञान नाशे तहां लों !!
तहां लों नहीं तू मरे दुष्ट मूंजी !
रचा धातृ तू ! क्या उन्हें हाय सूझी !!

(८)

अरे क्रोध ! जा ने तुझे जीत लीन्हा !
सभी जीत लीन्हें बड़ा काम कीन्हा !!
वही धन्य जानो, वही विष्णु मानो !
वही भक्त ज्ञानी, वही मुक्त जानो !!

आत्म स्वरूप ।

(१)

रातों दिनों रेल चला करे है।
सिंगल गिरे और उठा करे है॥
खंभा जरा भी सरके नहीं है।
त्यों ठोस आत्मा खिसके नहीं है॥

(२)

आ रेल गाड़ी टिक जावती है।
जाती चली है फिर आवती है॥
हाले न चाले पटरी कभीं है।
त्यों स्वस्थ आत्मा डिगता नहीं है॥

(३)

आया गया स्टेशन दीखता है।
आता न जाता ध्रुव ज्यों डटा है॥
है देह आता अरू देह जाता।
आत्मा न जाता नहिं लौट आता॥

(४)

गाड़ी हजारों चलती सदा ही।
रास्ता न चाले रहता वहाँ ही॥
है देह जन्मे, मर देह जाता।
आत्मा मरे ना नहिं जन्म पाता॥

(५)

गाड़ी लड़ें टूटत भी रहैं हैं।
था लैन पे से गिरती रहैं हैं॥
गाड़ी गिरें भूमि रहै वहीं है।
त्यों आत्म भूमा हिलता नहीं है॥

(६)

दे तार कोई अरू लेय कोई।
बे तार ही ना कुछ कार्य होई॥
स्वस्थान से ना बिजली चले है।
त्यों आत्म किंचित् न कभी हिले है॥

(७)

देके किराया चढ़ती सवारी।
पूरे हुए दाम गई सवारी॥
ना आत्म ;गाड़ी नहिं है सवारी।
सत्ता तथा स्फूर्ति प्रदान कारी॥

(८)

सो आत्म मैं ही सब में भरा हूं।
हैं सर्व मिथ्या शिव मैं खरा हूं॥
प्रज्ञान हूं, सत्य अनन्त हूं मैं।
दुर्लक्ष्य, अव्यक्त, अचिन्त्य हूं मैं॥

कृषी कार (किसान)।

(१)

कृषीकार ! खेती तुझे बोवनी है।
गुजारा उसी पे कमाई वही है॥
तुझे चाहिये खेत ऐसा कमाना।
रहे घास का बीज किंचित् वहां ना।

(२)

भला खेत जो कंडुवे से भरा हो।
वहां अन्न अंकुर कैसे हरा हो॥
नहीं अन्न हो, होय तो अल्प होई।
नहीं लाभ पूरा उठाय पाय कोई॥

(३)

लगा आग दे, बीज दूना जला दे।
कमा खूब ले खाद तामें मिला दे॥
वही अन्न बो दे जिसे बोवना हो।
उगे बीज पूरी मनोकामना हो॥

(४)

करे खेत ऐसा सदा हो सुखारी।
बुझे प्यास सारी मिटे भूख सारी॥
सदा के लिये पूर्ण भंडार होवे।
मिटे दीनता विश्व आधार होवे॥

(५)

कृषीकार हे ! आर्य सन्तान है तू !
यहां आगया है किसी पुण्य से तू ॥
करे कर्म अच्छे मिले सर्व ऋद्धी ।
करे कर्म निष्काम हो शुद्ध बुद्धि ॥

(६)

घनी कामनायें बसें बुद्धि माहीं ।
जलाये बिना, बुद्धि हो शुद्ध नाहीं ॥
सदाचार जो तू करेगा सदाई ।
तभी बुद्धि में आयगी शुद्धताई ॥

(७)

जगत् कामनायें सदा दुःख देती ।
भगा शांति देती, बुला शोक लेती ॥
विरागाग्नि में कामनायें जलादे ।
विवेकादि का खाद खासा बिछा दे ॥

(८)

तभी बोध का बीज प्यारे उगेगा ।
बड़ा वृत्त हो, फूल देगा फलेगा ॥
घनी होयगा तू ! सुखी होयगा तू !
निजानन्द में मग्न हो सोयगा तू !!

गुरू वाक्य ।

(१)

अरे शिष्य ! है कौन ? क्या पूछता है ?
तुझे देखि आश्चर्य होता महा है ॥
सभी विश्व में एक तू ही भरा है ।
यही जानने देह तूने धरा है ॥

(२)

जुदा विश्व से विश्व में तू मिला है ।
सभी से पृथक् है, सभी में बसा है ॥
छुपा था खजाना पता था न तेरा ।
स्वयं को बताने बना रूप मेरा ॥

(३)

अनेकों हुआ, एक को, तू ! बताता ।
तुही ! मान है मेय तुही प्रमाता ॥
तुही ! होय राजा किरीटादि धारे ।
तुही ! भिक्षु कौपीन कंथा संभारे ॥

(४)

करे भोग तू ही ! तुही होय रोगी ।
करे योग तू ही ! बने सिद्ध योगी ॥
तुही ! बैठि एकांत माला घुमावे ।
सभा में तुही ! कृष्ण के गीत गावे ॥

(५)

धरे ध्यान तू ही ! करे विष्णु पूजा ।
कथे ज्ञान तू ही ! नहीं अन्य दूजा ॥
तुही ! देह है रे, तुही ! विश्व है रे ।
तुही ! चन्द्र, अग्नि, तुही ! सूर्य है रे ॥

(६)

गुरू होय के सीख देता तुही है ।
गुरू पास जा सीख लेता तुही है ॥
तुही ! होय है जीव देहाभिमानी ।
बने है तुही ! ईश विश्वाभिमानी ॥

(७)

नहीं देह तेरा ! नहीं देह है तू ।
परे देह से है, परे विश्व से तू ॥
चिदानन्द, संदोह, अद्वैत है तू ।
सुखी शांत, सर्वात्म, कूटस्थ है तू ॥

(८)

अहंकार दे देह का त्याग प्यारे !
सभी विश्व में पूर्ण हो शिष्य जारे ॥
सुना शिष्य भोला ! गुरू वाक्य ऐसा ।
हुआ स्वस्थ, स्वच्छन्द था पूर्व जैसा ॥

मनी आज अच्छी दिवाली हमारी।

(१)

सभी इन्द्रियों में हुई रोशनी है।
यथा वस्तु है सो तथा भासती है॥
विकारी जगत् ब्रह्म है निर्विकारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(२)

दिया दर्श ब्रह्मा जगत् सृष्टि कर्ता।
भवानी सदा शँभु औ विघ्न हर्ता॥
महा विष्णु चिन्मूर्ति लक्ष्मी पधारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(३)

दिवाला सदा ही निकाला किया मैं।
जहां पे गया हारता ही रहा मैं॥
गये हार हैं आज शब्दादि ज्वारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(४)

लगा दाव पे नारि शब्दादि देते।
कमाया हुआ द्रव्य थे जीत लेते॥
मुझे जीत के वे बनाते भिखारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(५)

गुरू का दिया मन्त्र मैं आज पाया।
उसी मन्त्र से ज्वारियों को हराया॥
लगा दांव वैराग्य ली जीत नारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(६)

सलौनी, सुहानी, रसीली मिठाई।
वसिष्ठादि हलवाइयों की बनाई॥
उसे खाय तृष्णा दुराशा निवारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(७)

हुई तृप्ति, सँतुष्टता, पुष्टता भी।
मिटी तुच्छता, दुःखिता, दीनता भी॥
मिटे ताप तीनों हुआ मैं सुखारी।
मनी आज अच्छी दिवाली हमारी॥

(८)

करे वास भोला! जहां ब्रह्म विद्या।
वहां आ सके ना अंधेरी अविद्या॥
मनावें सभी नित्य ऐसी दिवाली।
हमारी मनी आज जैसी दिवाली॥

अज्ञानी जीव की दशा ।

(१)

बिछा एक पयंङ्क प्रासाद में है।
वहां एक राजा पड़ा नींद में है ॥
नशे में हुआ चूर सोया हुआ है ।
नहीं होश क्या राज्य में हो रहा है ॥

(२)

हुई राज्य की ओर से है रूखाई ।
करी पास के भूप ने है चढ़ाई ॥
किला घेर के शत्रु सैना खड़ी है ।
चलो लूट लो, मार दो हो रही है ॥

(३)

मची राज्य में, सैन्य में खलबली है ।
करें हाय क्या यत्न सूझे नहीं है ॥
करी रोक तो भी न पूरी पड़ी है ।
प्रजा लूटती आप सैना गई है ॥

(४)

प्रजा माल छोड़ा भगी जा रही है ।
गया हाय सर्वस्व चिल्ला रही है ॥
लगी लूटने द्रव्य को आप सैना ।
न दे माल तो जान ही होय देना ॥

(५)

पुरी लूट के भूप प्रासाद घेरा।
क्रिया शत्रु चारों दिशा मांहिं डेरा॥
प्रधानादि आ भूप को हैं जगाते।
न जागे घनी युक्तियां हैं लगाते॥

(६)

भरी शोक में रानियां आगई हैं।
दबा हाथ पैरादि चेता रहीं हैं॥
नहीं चेतता रो रहीं झींकती हैं।
दुःखी हो रहीं छातियां पीटती हैं॥

(७)

विवेकी कहें योग्य राजा नहीं है।
बचा प्राण भागो भलाई यही है॥
नहीं रानियों को सकें हैं बचाई।
खज़ाना लुटा आंच भी पास आई॥

(८)

सुने कान से आंख से देखता है।
दुःखी हो रहा है, पड़ा औंघता है॥
यही दुर्दशा जीव की हो रही है।
न हो ज्ञान भोला! न होता सुखी है॥

अज्ञानी को उपदेश।

(१)

संसार मांहीं कुछ सार नांहीं।
क्यों डुबोता है भव सिंधु मांहीं॥
आया जिसे ढूंढन ढूंढ सो रे।
आयू वृथा ही मत मूंढ़ खो रे॥

(२)

आया तमाशा करने यहां तू।
कर्तार सच्चा बन है गया तू॥
मैं तोर में तू जकड़ा हुआ है।
तू आप ही बन्धन में पड़ा है॥

(३)

पी मोह दारू नर है भुलाया।
जाने नहीं है अपना पराया॥
कर्तव्य भूला फिरता फिरे है।
ज्यों बांदरा नृत्य किया करे है॥

(४)

है कौन साथी जग मांहिं तेरा।
दो रात का है जग में बसेरा॥
जीते मरे बंध रूलावते हैं।
चिन्ता चिता मांहिं जलावते हैं॥

(५)

आया सवेरा पुनि सांझ आई।
क्या काम तूने करि लीन्ह भाई॥
जंजाल मांहीं प्रिय आयु खोई।
कीन्हा इकट्ठा नहिं पुण्य कोई॥

(६)

भाई भतीजे सुत वित्त दारा।
झूठा सभी है जग का पसारा॥
चीजें यहां की रहती यहां हीं।
ना काम देवें यम लोक मांहीं॥

(७)

साम्राज्य पाने जग मांहि आया।
थोथी प्रशंसा सुनि के लुभाया॥
साम्राज्य की खोज नहीं करे है।
अन्धा हुआ खावत ठोकरें है॥

(८)

मिथ्या तमाशा अब त्याग दे रे।
दे खोल आंखें निरख आत्म ले रे॥
तल्लीन होजा सुख सिंधु मांहीं।
कहे गिरधर भोला! कुछ अन्य नाँहीं॥

व्यापार ।

(१)

ले पुण्य पूंजी जग जीव आया ।
व्यापार से द्रव्य करे सवाया ॥
पाले कुटुम्बी सुत दार भ्राता ।
है मूल पूँजी पहिली गंवाता ॥

(२)

संसार का माल भरा करे है ।
खा जाय है दीमक या सड़े है ॥
व्यापार ऐसा करि जीव प्यारे ।
हो जाय दूना धन चौगुना रे ॥

(३)

जो माल खोटा भरता रहेगा ।
टोटा सदा ही पड़ता रहेगा ॥
लाया हुआ भी धन जायगा रे ।
व्यापार ऐसा तज चेत जा रे ॥

(४)

राजा धनी भी जग नेहकारी ।
देखे ऋणी हैं अति ही दुखारी ॥
नाता न टूटे ऋण ना चुके है ।
ना जन्म छूटे भय ना छुटे है ॥

(५)

नलमती से मन शोध ले रे।
सो ज्ञान का बीज अनूप दे रे॥
सत्संग को दे जल सींच ले रे।
वैराग्य से नित्य रखा उसे रे॥

(६)

पा काल ज्ञानांकुर वृक्ष होवे।
तू वृक्ष नीचे सुख नींद सोवे॥
चारों दिशा में भर जायगा रे।
ब्रह्मांड से भी बढ़ जायगा रे॥

(७)

था पाँच या सात कुटुम्ब छोटा।
ब्रह्मांड हो जाय कुटुम्ब मोटा॥
भण्डार पूरा धन धान्य पूरा।
ऐश्वर्य हो अक्षय राज्य पूरा॥

(८)

भोला! पुराना धन जो बढ़ाता।
हो सेठ पूरा सुख शांति पाता॥
सो दूसरों को धन दान देता।
है आप सा सेठ बनाय लेता॥

उद्धार ।

(१)

भूला स्वयं को जग सत्य भासा ।
लागी महा ब्याधि क्षुधा पिपासा ॥
कामांध जो दीन दुःखी हुआ हो ।
उद्धार कैसे उस जीव का हो ॥

(२)

अज्ञान दारू जिसको चढ़ी हो ।
कैसे उसे जांच भली बुरी हो ॥
जो भ्रान्त होवे, नहिं भ्रान्ति जानें ।
उद्धार कैसे बिन सीख मानें ॥

(३)

जो कीट विष्ठा, मल में रहे है ।
न पुष्प की बांस रूचे उसे है ॥
जो रोग में ही रत मानता हो ।
उद्धार कैसे उस मूढ़ का हो ॥

(४)

जो आज खाया फिर कल्ल खाया ।
जिह्वा जलाई मुख भी जलाया ॥
तो भी उसी में मन दौड़ता हो ।
उद्धार कैसे उस मूर्ख का हो ॥

(५)

जन्मे मरे उर्ध्व चढ़े गिरे है।
नाली तलों में गिरता फिरे है॥
जो चक्र पे मूढ़ चढ़ा हुआ है।
उद्धार कैसे उस का भला हो॥

(६)

ना पूर्व का पुण्य जगे जहां लौं।
संसार निस्सार न हो तहां लौं॥
संसार के भोग न रोग भासे।
उद्धार होवे तब लौं कहां से॥

(७)

आदेश आता गुरू शास्त्र से है।
अज्ञान जाता पुरुषार्थ से है॥
विश्वास होवे गुरू शास्त्र मोहीं।
उद्धार में है फिर देर नाहीं॥

(८)

भोला ! गुरू ईश्वर की कृपा हो।
अभ्यास वैराग्य प्रपूर्णता हो॥
ज्यों देह को बोध निजात्म का हो।
उद्धार त्यों ही इस जीव का हो॥

महाभारत युद्ध ।

(१)

है जीव ! क्यों तू जग मांहि आया ।
भोगार्थ नाहिं नर देह पायो ॥
स्वराज्य तेरा छल से छिना है ।
लेने उसी को नर तू बना है ॥

(२)

कामादि से युद्ध किये सरेगा ।
खोया हुआ राज्य तेरा मिलेगा ॥
कामादि के जो वध से डरे तू ।
श्री कृष्ण जैसा गुरू खोज ले तू ॥

(३)

कर्तव्य तेरा रण जीतना है ।
क्यों मोह से कायर तू बना है ॥
तू शुद्ध चैतन्य महा बली है ।
दौर्बल्यता, योग्य तुझे नहीं है ॥

(४)

भीष्मादि जैसे बल वीर्य वाले ।
कामादि नाहीं धृति शौर्य वाले ॥
अज्ञान के वे पुतले दिखैया ।
ले शब्द वेधी शर मार भैया ॥

(५)

कर्त्तव्य से जो नर जी चुराता ।
ना स्वप्न में भी सुख शांति पाता ॥
ना कर्म बांधे कर कर्म नाना ।
आसक्ति किंचित् मन में न लाना ॥

(६)

हैं पूर्व के पुण्य हुए सहाई ।
हे जीव तूने रण भूमि पाई ॥
जी तोड़ के तू कर युद्ध शूरा ।
स्वाराज्य ले के बन भूप पूरा ॥

(७)

सत्संग पाया नर जन्म पाया ।
है तू विवेकी कुल श्रेष्ठ जाया ॥
क्यों चूकता है कर युद्ध प्यारे ।
है श्रेय जीते अरु प्रेय हारे ॥

(८)

जो जीत जावे पद नित्य पावे ।
जो हार भी हो, चढ़ स्वर्ग जावे ॥
कर्त्तव्य तेरा जग जीतना है ।
संकल्प भोला ! यह आदि का है ॥

आत्म प्राप्ति।

(१)

वेदान्त वर्षा सुख शान्ति कर्त्री।
पापौघ छैनी भव ताप हर्त्री॥
होती सदा गर्जन भी रहे है।
तो भी उसे ना वहरा सुने है॥

(२)

त्वक् स्पर्श से ही कर शान्त देती।
वेदान्त वाणी हर दुःख लेती॥
शोकाग्नि से त्वक् जिसकी जली है।
छूता नहीं सो हित वाक्य भी है॥

(३)

संसार है मोहक दुःख दाता।
संसारियों को नित ही रुलाता॥
वेदान्त सिंधु, सुख को दिखाता।
ना आंख फूटा पर देख पाता॥

(४)

ज स्वाद की कीचड़ में फंसा है।
खाली करे पेट भरे सदा है॥
आत्मा रसों का रस है निराला।
ना स्वाद ले है, नर भ्रान्ति वाला॥

(५)

गन्दी हवा में मर जो रहे हैं ।
गन्दी हवा ही जिसको रुचे है ॥
सो सूंघ सकता शुचि गन्ध नाहीं ।
आत्मा कहाँ जो श्रुति अंज नाहीं ॥

(६)

ज्यों गाय छूटी हरिया चरे है ।
जो देखता बाहर ही फिरे है ॥
वेदान्त का मर्म न जान सकता ।
न तत्व प्रत्येक पहिचान सकता ॥

(७)

स्वाधीन होवे मन इन्द्रियां भी ।
ना भोग में राग रहे जरा भी ॥
वैराग्य आवे हट राग जावे ।
सच्चा मुमुक्षु तब ही कहावे ॥

(८)

निर्मूल होती जब भोग इच्छा ।
उत्पन्न होती तब ही मुमुक्षा ॥
तीनों कृपा का बल पाय जोई ।
हो धीर योगी कृत् कृत्य सोई ॥

क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है।

(१)

को देव ऐसा मम देह में है।
जाका उजाला सब विश्व में है॥
देखे सभी दीखता ना कहीं है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(२)

जो एक चेष्टा बहु से कराता।
अद्वैत भी द्वैत जगत् दिखाता॥
जो एक है और अनेक भी है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(३)

अज्ञान जाका जग है बनाता।
है ज्ञान जाका जग को मिटाता॥
माया न जामें अणु मात्र भी है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(४)

सर्वत्र जो है परिपूर्ण ज्योतिः।
साक्षी सभी का स्थिर शुद्ध ज्योतिः॥
कूटस्थ भूमा ध्रुव एक ही है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(५)

ना सूर्य को मेघ कभी ढके है।
द्रष्टा न देखे फिर भी उसे है॥
भासे छुपा सा न छुपे कभी है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(६)

आये गये को स्थिर जान सकता।
जो चालता ना पहिचान सकता॥
उत्पत्ति जामें लय भासती है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(७)

है वस्तुतः दीपक का उजारा।
कीन्हा उसी का चिमनी पसारा॥
जो दीप जैसा चिमनी नहीं है।
क्या आत्म मेरा वह ही नहीं है॥

(८)

आत्मा अनात्मा पहिचान जावे।
भोला ! अविद्या फिर ना सतावे॥
अज्ञान में नाच नचावती है।
विज्ञान देखा भग जावती है॥

पश्चाताप ।

(१)

क्यों व्यर्थ मैंने नर जन्म पाया।
क्यों बोझ ढोने जग माँहि आया ॥
प्रारब्ध में था यदि भार ढोना।
तो चाहिये था खर बैल होना ॥

(२)

मैंने किया क्या नर देह पाके।
भोगा किया भोग दिखा छुपा के ॥
आयुष् वृथा भोगन में बिताई।
निःश्रेय में बुद्धि नहीं लगाई ॥

(३)

था मैं जगत् में जिस हेतु आया।
सो 'मैं' अभी लों नहिं जान पाया ॥
जो जो किया मैं श्रम ही उठाया।
पानी मथे घी कब हाथ आया ॥

(४)

टोटे नफे को सब जानते हैं।
पक्षी पशु भी पहिचानते हैं ॥
बुद्धिमान सारी कर वे रहे हैं।
प्रारब्ध पूरा अपना करें हैं ॥

(५)

होके मुमुक्षु नहिं आत्म चीन्हा।
वैराग्य मांही नहिं चित्त दीन्हा॥
कसे मुमुक्षु बन वो सके था।
जो देखके साधक को हंसे था॥

(६)

ना दान दीन्हा नहिं धर्म कीन्हा।
लोभी घमण्डी कब दान दीन्हा॥
'मैं' दान देना जब चाहता था।
पैसे तभी आ सुत मांगता था॥

(७)

ना सिद्ध कीन्हा पद मोक्ष 'मैंने'।
ना योग जाना नहिं सांख्य 'मैंने'॥
ना स्वर्ग के योग क्रिया करी 'मैं'।
हां चित्त दीन्हा युवती मरी में॥

(८)

क्या जायगा निष्फल जन्म मेरा।
या, जा करूंगा गुरू द्वार डेरा॥
रक्षा करो हे गुरू मुक्ति दाता।
मैं दीन दुःखी तुम दीन त्राता॥

रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ।

(१)

ना दान दीना, नहिं ध्यान कीन्हा ।
संसार चक्की बिच शीश दीन्हा ॥
ना श्रेय कीन्हा अपना पराया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ॥

(२)

काया फुलाना, पुरूपार्थ जाने ।
या बाल बच्चों रत्न मोद माने ॥
झूंठी बड़ाई यश में भुलाया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ॥

(३)

लोभी महा लोलुप हो रहा है ।
क्रोधाग्नि मांहि जलता सदा है ॥
मैं और मेरा तम घोर छाया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ॥

(४)

आया कहां से चलना कहां है ।
लेना किसे, क्या तजना यहां है ॥
है कौन तू आप पता न पाया ।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया ॥

(५)

थे भोग पांचों यदि भोगना ही।
क्यों जन्म लेता नर देह माहीं॥
कीटादि होता नर क्यों बनाया।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया॥

(६)

था पाप खोने जग मांहि आया।
ना पाप खोये, अघ ही बढ़ाया॥
ले कांच लीन्हा मणि को गंमाया।
रे मूढ़ ! क्यों तू ज मांहि आया॥

(७)

रागादि कीन्हा शुभ कर्म छोड़ा।
ना ईश मांही मन लेश जोड़ा॥
ऐश्वर्य चाहा धन में लुभाया।
रे मूढ़ ! क्यों तू जग मांहि जाया॥

(८)

जा चेत प्यारे ! तज मूढ़ता दे।
विश्वेश मांहीं मन को लगा दे॥
कल्याण होवे तज तुच्छ माया।
आत्मज्ञ ही पंडित है कहाया॥

वृक्ष ।

(१)

ऐ वृक्ष ! तेरे गुण क्या गिनाऊँ ।
वर्षों लिखे भी नहिं अन्त पाऊं ॥
दानी महा, याचकता न भावे ।
पक्षीन पोषे, सुख से सुलावे ॥

(२)

दे फूल, पत्ते, फल, काष्ठ, छांई ।
तो भी जरा भी अभिमान नाहीं ॥
आयुष्य मांही उपकार करता ।
जीते मरों का हितकार भर्ता ॥

(३)

छाया घनी आ तपसी बसें हैं ।
भक्ती करें हैं, तप आचरे हैं ॥
ताती हवा शीतल है बनाता ।
तप्ते हुओं की तप है मिटाता ॥

(४)

ज्ञानी सभी देह क्रिया करे है ।
निर्लेप तो भी सबसे रहे है ॥
हे वृक्ष ! तू भी करता वही है ।
क्या सन्त ज्ञानी यह सीख दी है ॥

(५)

है शाँत त्यागी! पुनिदांत भी है।
शाखादि नाना, जड़ एक ही है॥
जो ब्रह्म के लक्षण वेद गाते।
हे वृक्ष! वे ही तुझमें दिखाते॥

(६)

तूने नहीं शास्त्र कभी पढ़ा है।
शास्त्रानुसारी फिर भी सदा है॥
ज्ञानी, अमानी, अवधूत जैसा।
गम्भीर तू निश्चल, धीर तैसा॥

(७)

रे वृक्ष! तेरे गुण प्राप्त जाको।
मैं मानता हूं, भगवान ताको॥
सो धन्य प्राणी जग में अनूठा।
जीता हुआ ही भव बन्ध छूटा॥

(८)

तेरे गुणों को नर जो विचारे।
एकाग्र हो के मन मांहि धारे॥
संसार से निश्चय पार जावे।
कैवल्य निष्कंटक, राज्य पावे॥

अज्ञान निद्रा ।

(१)

क्यों मूढ़ ! सोता, नहिं जागता क्यों ।
अज्ञान निद्रा नहिं, त्यागता क्यों ॥
संसार सारा मरता लखे है ।
आसक्ति तो भी तनु में रखे है ॥

(२)

संसार, संसार पदार्थ चिन्ता ।
दे छोड़ होजा जग से निचिन्ता ॥
व्यक्तित्व से भोगत कष्ट सारे ।
व्यक्तित्व त्यागे नहिं कष्ट प्यारे ॥

(३)

है तू असंगी पर संग माने ।
भंगी हुआ है, निज को न जाने ॥
आया यहां देखन तू तमाशा ।
जन्मे मरे होवत है हिरासा ॥

(४)

चाले जगत् निश्चल तू खड़ा है ।
होके जगत् का भ्रम में पड़ा है ॥
अध्यक्ष होके पुतली भया है ।
गावे, नचे, ज्ञान गुमां दिया है ॥

(५)

है दृश्य दीखे, लय हो जावे।
द्रष्टा न तू जावत है न आवे॥
ना भेद की गंध यहाँ कहीं है।
मैं तू नहीं है दुःख भी नहीं है॥

(६)

काया कभी भी थिर ना रहे है।
साठों घड़ी ही बदला करे है॥
ना साथ तेरे यह देह जावे।
क्यों देह मांही ममता बढ़ावे॥

(७)

विकाल मृत्यु शिर पर डटा है।
खाजाय कैसे कब क्या पता है॥
खाया हुआ ही क्षण में धरा है।
तैयार होजा अब देर क्या है॥

(८)

संसार आपत्ति घिरा भरा है।
जो जानता पण्डित सो खरा है॥
अज्ञान निद्रा तजता वही है।
अध्यात्म मांही टकता वही है॥

वेदान्त डोंडी।

(१)

वेदान्त शोधा स्वस्वरूप चीन्हा।
कामादि जीते सम मृत्यु, जीना॥
है शान्त सो ही सबसे सुखी है।
वेदान्त डोंडी कहती यही है॥

(२)

ब्रह्माण्ड सारा घर है बनाया।
निःशंकता आसन है जमाया॥
तत्त्वज्ञ सो ही, यति भी वही है।
वेदान्त डोंडी कहती यही है॥

(३)

संसार नाहीं दुःख लेश नांही।
हो दुःख कैसे सुख सिंधु मांही॥
अज्ञान स्वप्ना तज शीघ्र दीजे।
वेदान्त डोंडी सुन मित्र लीजे॥

(४)

है चाह खोटी जग में घुमाती।
तृष्णा बढ़ाती सबको रूलाती॥
ब्रह्मादि मिथ्या पद त्यागियेगा।
वेदान्त डोंडी सुनि लीजियेगा॥

(५)

धर्मादि कोई नहिं आत्म माहीं ।
ध्यानादि होते सब अन्य माहीं ॥
विज्ञान या ज्ञान कहा न जावे ।
वेदान्त डोंडी हमको सुनावे ॥

(६)

माया मरी का सब है पसारा ।
है ब्रह्म आत्मा सम सर्व प्यारा ॥
सो ब्रह्म न्यारा तुमसे नहीं है ।
वेदान्त डोंडी कहती यही है ।

(७)

क्या चाहता है किस खोज में है ।
तू साक्ष्य साक्षी सब विश्व में है ॥
ना मोक्ष, ना बन्ध, ना विश्व ही है ।
वेदान्त डोंडी कहती यही है ॥

(८)

है मुक्त क्यों बन्धन मानता तू ।
अन्धा बना क्यों बन सूझता तू ॥
सच्चित् तुही है सुख सिंधु भी है ।
वेदान्त डोंडी कहती यही है ॥

देह के दोष।

(१)

जो वस्तुतः शोभन देह होता।
कोई कभी ना मलता न धोता॥
धोवें मले हैं सजते इसे हैं।
वस्त्रादि से दोषन कूं ढकें हैं॥

(२)

दुर्गन्ध वाला घर व्याधियों का।
जीता मरा भोजन हिंसकों का॥
जो अन्त में ईंधन आग का है।
तो देह में शोभन वस्तु क्या है?

(३)

या देह में काल सदा बसे है।
होता हमेशा झगड़ा रहे है॥
एकाद ही भूत करे दुखारी।
हों पांच तो क्यों कर हों सुखारी?

(४)

है गर्भवासा दृढ़ जेलखाना।
वर्षों रहे बालक है अयाना॥
पूरी जहां पे परतन्त्रता है।
बालापना सो किस काम का है?

(५)

अन्धा करे 'यौवन' सूझतों को।
देता बना पागल पण्डितों को॥
पापौघ सारे उपजें जहां से।
ऐसी जवानी सुख दे कहां से?

(६)

हैं गाल बैठे मुख पोपला है।
हड्डी गली हैं तन खोखला है॥
देखें सुने नाहिं चला न जावे।
सो वृद्ध 'काया' किसको सुहावे?

(७)

लागे सदा ही भय मृत्यु से है।
इच्छा बिना ही मरना पड़े है॥
ऊँचा गया तो गिरता वहां से।
है 'दुःख नीचे' सुख हो कहां से?

(८)

जन्मा करे देह मरा करे है।
पाता रहै दुःख डरा करे है॥
वैराग्य भोला! कर देह से रे।
विश्वेश मांहि मन जोड़ दे रे॥

मन वश करने के सरल उपाय।

(१)

जो चित्त एकाग्र न हो प्यारे।
तो वस्तु प्यारी मन में बसा रे॥
ध्या तू! उसे ही मत अन्य ध्यावे।
एकाग्र हो चित्त कहीं न जावे॥

(२)

संसार स्वप्न सम जान प्यारे।
सोता हुआ सा कर कर्म सारे॥
तो शान्ति पूरी मन मांहि होगी।
हो जायगा साधक, सिद्ध, योगी॥

(३)

मैत्री सुखी से करूणा दुःखी पे।
हो धर्म में प्रेम दया सभी पे॥
देखे किसी के नहिं पाप जो है।
होता सुखी, स्वस्थ, सुशान्त सो है॥

(४)

अद्वैतता जो सब में निहारे।
किंचित् कहीं द्वैत नाहीं विचारे॥
ना राग जामे नहिं द्वेष ही है।
एकाग्रता का मन नित्य ही है॥

(५)

शब्दादि पांचों विष ज्यों विचारे।
ना ध्यान में भी उनको निहारे॥
तो चित्त तेरा स्थिरता लहेगा।
जामें लगावे तिसमें लगेगा॥

(६)

विश्वेश के हेतु क्रिया सभी हो।
इच्छा किसी भी फल की नहीं हो॥
सो चित्त जल्दी वश होय जावे।
लागे वहां ही जहं तू लगावे॥

(७)

ओंकार का जाप करे सदा ही।
या नाम रामादि रटे तथा ही॥
थोड़े दिनों में मन शान्ति पावे।
एकाग्र होवे रुक तात ! जावे॥

(८)

ओंकार का अर्थ सदा विचारे।
सर्वत्र ही ब्रह्म सदा निहारे॥
तो चित्त भोला ! सम शान्त होवे।
हो सिद्ध योगी सुख नींद सोवे॥

प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ।

(१)

वर्षों दिवाली करते रहे हो ।
तो भी अन्धेर घुप में पड़े हो ॥
माया अन्धेर अब त्यागियेगा ।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(२)

पूजा अनात्मा नहिं आत्म पूजा ।
पूजा करे हो नित भूत दूजा ॥
ना दूसरे से सुख पाइयेगा ।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(३)

क्या सूर्य को धूप छुपा सके है ।
क्या सिंधु को तरंग दबा सके है ॥
ना झूंठ से सत्य छिपायेगा ।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(४)

द्रष्टा तथा दृश्य जुदे जुदे हैं ।
अज्ञान से भासते एक से हैं ॥
अज्ञान की ऐनक तोड़ियेगा ।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा ॥

(५)

बाले दिये बाह्य किया उजेरा।
फैला हुआ है घर में अंधेरा॥
अंधेर ऐसा मत कीजियेगा।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(६)

'योगांग झाडू, घर चित्त झाड़ो।
विक्षेप कूड़ा, 'सब झाड़ काढ़ो'॥
अभ्यास पोता फिर फेरियेगा।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(७)

प्रज्ञा मिला प्राणन वत्ति घालो।
वैराग्य घी दीपक ज्ञान बालो॥
जो वस्तु जैसी तस देखियेगा।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

(८)

ऐसी दिवाली श्रुति सन्त गाई।
अत्रेय योगी करके दिखाई॥
भोला ! कहे मित्र न चूकियेगा।
प्रज्ञा दिवाली प्रिय पूजियेगा॥

सत्संग पीयूष ।

(१)

सत्संग पीयूष पीया जिन्होंने ।
कैवल्य साम्राज्य लिया तिन्होंने ।
सत्संग में है यदि प्रीति तेरी ।
तो मुक्ति में है अब नांहि देरी ॥

(२)

हैंगे घने साधन मोक्ष के रे ।
सत्संग है उत्तम सब से रे ॥
हों सर्व ही साधन सिद्ध या से ।
इच्छा सभी होंय निवृत्त या से ॥

(३)

जो सर्वदा ही हरि पाद ध्यावें ।
व्यापार दूजा न करें करावें ॥
तत्त्वज्ञ, योगी, सम दर्शी, ज्ञानी ।
हैं सेव्य वे सन्त निराभिमानी ॥

(४)

जो दर्शनों से अघपुञ्ज धोते ।
जो वाक्य से शंसय सर्व खोते ॥
श्रद्धा बढ़ाते तव मोक्ष में रे ।
वे सन्त ही सेवन योग्य है रे ॥

(५)

तात्पर्य के लिंग छओं बताते।
तात्पर्य का निर्णय हैं कराते॥
सामान्यता और विशेषता से।
शास्त्रार्थ खोलें परिपूर्णता से॥

(६)

काटे विरोधी मत वेद के जो।
कैवल्य का मार्ग दिखांय हैं जो॥
जो मेट देते मत भेद सारे।
वे सन्त हैं सेवन योग्य प्यारे॥

(७)

जो पूर्व औ उत्तर पक्ष भाषैं।
संदेह कोई नहिं शेष राखैं॥
जो तार देते भव सिन्धु से रे।
मल्लाह वे सेवन योग्य हैं रे॥

(८)

भोला! उन्हीं से कर प्रश्न जाके।
माथा झुका के मन को मिलाके॥
अज्ञान तेरा हर शीघ्र लेंगे।
सर्वत्र ही ईश दिखाय देंगे॥

पृथिवी का गीत।

(१)

राजे करें राजन पे चढ़ाई।
पृथिवी हँसे है लखि मूर्खताई ॥
हैं ये खिलौने यमराज के हा!
तो भी लड़े हैं मम हेतु ये हा ॥

(२)

है लोभ बैरी हर बुद्धि लेता।
दे मींच आँखें करि अन्ध देता ॥
है देह जैसे मृत कुम्भ कच्चा।
जाने उसे है नर मूढ़ सच्चा ॥

(३)

कामादि शत्रु जब जीत लेंगे।
स्वाधीन पीछे पृथिवी करेंगे ॥
ऐसा विचारें नर मूढ़ जे हैं।
देखें नहीं मृत्यु समीप वे हैं ॥

(४)

कामादि जीते महि राज्य पाया।
तो क्या हुआ मृत्यु नहीं हराया ॥
कामादि जीतें पद विष्णु पावें।
वे धीर ही पंडित हैं कहावें ॥

(५)

आये घने ही मनु आदि राजा।
सारे हुए वे यमराज खाजा॥
छोड़ा यहां ही पृथु आदि जा कूँ।
जीता चहे हैं नर मूढ़ ता कूँ॥

(६)

मेरे लिए मूढ़ करें लड़ाई।
चाचा, भतीजे, पितु, पुत्र, भाई॥
है राज्य मांहि ममता जिन्हों की।
आंखें हुई हैं धुंधली तिन्हों की॥

(७)

है भूमि मेरी नहिं अन्य की है।
ऐसा कहै सो मतिमन्द ही है॥
मेरी ही मेरी करते रहे हैं।
ले साथ कोई न मुझे गए हैं॥

(८)

गाथा मरों की इतिहास गावे।
वैराग्य कीजे यह ही सिखावे॥
भोला! यहां पे मन ना लगारे।
भूमेश के पावन गीत गारे॥

ज्ञान छाता।

(१)

वर्षात, शीत, गरमी तिहुँ ताप हर्ता।
नेत्रादि इन्द्रियन कूं स्थिर स्वस्थ कर्ता॥
संसार धूलि करि दूर विवेक दाता।
तेरी हमेश जय हो जय ज्ञान छाता॥

(२)

धारे तुझे चतुर जो नहिं दुःख पाता।
आनन्द पूर्ण जल में दिन रात न्हाता॥
दो लोक मांहि सुख शान्ति सुकीर्ति पाता।
तेरी हमेश जय हो जय ज्ञान छाता॥

(३)

ज्यों आठ तान-बल से, तन जाय छाता।
विस्तार से खुलत या कम होय जाता॥
पुर्यष्टि का मरण, जीवन तू बताता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता॥

(४)

रक्षा करे रिपुन से, भय तू भगाता।
मोहादि मार सब ही, सुख से सुलाता॥
मिथ्या बता जगत, रोवत कूं हंसाता।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता॥

(५)

योधा लड़े कवच कूँ तनु माहिं धारे ।
रक्षा करे स्व तनु की निज शत्रु मारे ॥
कीन्हा तुझे कवच जे, नहिं हारते वे ।
माया गढ़ी सहित, सैन्य विदारते वे ॥

(६)

धारे तुझे न धन का कुछ खर्च होई ।
बोझा न होय तन या मन मांहि कोई ॥
वैराग्य भूख लगती भव रोग जाता ।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता ॥

(७)

संसार ताप, भय, शोक सभी छुड़ाता ।
ऐश्वर्य वान करता, यश कीर्ति दाता ॥
तेरे सिवा जगत् में नहिं अन्य त्राता ।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता ॥

(८)

है धन्य सो पुरुष जो तव छांह आया ।
है पुण्य देश जहं है तव पूर्ण छाया ॥
है धन्य शिष्य गुरू का तुझको लगाता ।
तेरी हमेश जय हो, जय ज्ञान छाता ॥

मैं कौन हूँ यह विचार कभी किया ना।

(१)

ज्ञानी स्वयं बनत तू सबको सिखाता।
निन्दा करे गुणिन की, गुण है छिपाता॥
है ठौर ठौर भ्रमता धन में लुभाना।
मैं कौन हूं यह विचार कभी किया ना॥

(२)

खोजे पदार्थ जग के मणि भी बनाया।
ले कार्य वायु जल से नभ घूम छाया॥
तेजादि कीन्ह वश में मन मोद माना।
मैं कौन हूं यह विचार कभी किया ना॥

(३)

ऊंचे बना महल मित्रन को बुलाया।
खाने खिलाय बहु भांति उन्हें रिझाया॥
ऐश्वर्य, मान, मद में फिरतो दिवाना।
मैं कौन हूं यह विचार कभी किया ना॥

(४)

आभूषणों वसन से तन है सजाया।
भोगा करे विषय गायन, नृत्य भाया॥
ऐश्वर्य, नाम, धन चाहत है कमाना।
मैं कौन हूँ यह विचार कभी किया ना॥

(५)

होगा कभी मरण ना, मन में बसी है।
हो स्वार्थ सिद्ध जिसमें करता वही है॥
हूँ मान्य विश्व भर में असत्कार्य ठाना।
मैं कौन हूँ यह विचार कभी किया ना॥

(६)

है सन्त, साधु जन को ठग तू बताता।
विद्याभिमान करता बन धूर्त जाता॥
संसार न्याय करता बनता सयाना।
मैं कौन हूँ यह विचार कभी किया ना॥

(७)

हाथी, तुरंग चढ़ता उड़ता हवा में।
सैरें करे अखिल यूरप अमरीका में॥
चीजें नवीन नित ही घड़ लेय नाना।
मैं कौन हूं यह विचार कभी किया ना॥

(८)

मापी समस्त पृथ्वी नभ ढूँढ डाला।
ऊँचे चढ़ा गिरिन सागर खूँद डाला॥
माया कभी न हटती न स्वरूप जाना।
चैतन्य हूँ, कि जड़ हूँ, इतना पता ना॥

रस एक हि आत्म स्वरूप रहै।

(१)

बहु रूप बने, बहु नाम धरे।
बहु बार जिये, बहु बार मरे॥
बहु लोक फिरे, बहु भोग लहै।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै॥

(२)

मन धर्म सुखादिक द्वन्द्व यथा।
घटना बढ़ना तनु धर्म तथा॥
नर नारि बना जिमिदार पना।
रस एक हि आत्म स्वरूप बना॥

(३)

सुर, दैत्य, मनुष्य, ग्रहस्थ वनी।
भल रूप कुरूप, दरिद्र, धनी॥
रत योग कभी, रत भोग कदा।
रस एक हि आत्म स्वरूप सदा॥

(४)

शव भूमि भले शिव मन्दिर हो।
नद, सागर या गिरि, कन्दर हो॥
रज, कंचन, वृक्ष, लता सुखदा।
रस एक हि आत्म स्वरूप सदा॥

(५)

बनता मिटता यह दृश्य जगत्।
क्षण नश्वर देखत मात्र असत्॥
उपजे जिसमें लय होवत है।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै॥

(६)

दिन रात घने रवि चन्द्र भये।
युग कल्प हजारन बीत गये॥
अविकार विकार न पावत है।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै॥

(७)

यम ध्यान, समाधि, सु संयम में।
लय, उत्पत्ति मांहि, बलाबल में॥
सबका अपना नित अच्युत है।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै॥

(८)

सब देखत सर्व दिखावत है।
नहिं देखन में पर आवत है॥
जिस शक्ति लई जग चालत है।
रस एक हि आत्म स्वरूप रहै॥

शिष्य प्रार्थना।

(१)

गुरू मैं बहु कष्ट उठाय रहा।
बहु भांति दरिद्र सताय रहा॥
रह हाड़ गए रह चाम गया।
गुरू देव ! करो अब आप दया॥

(२)

तुम से नहिं मैं कुछ मांगत हूं।
कर जोड़त हूं, पग लागत हूं॥
मम कोश मुझे तुम देउ बता।
जिहिं भांति मिले प्रभु देउ जता॥

(३)

श्रम है धन, सो बतला मुझको।
कुछ हानि नहीं श्रम भी तुझको॥
उपकार करो दुःख दीन हरो।
प्रभु वाक्य सुनाय धनाढ्य करो॥

(४)

बहु लोग धनी बतलांय मुझे।
निज बातन में फुसलांय मुझे॥
चिकनी चुपड़ी कहि मूंड लिया।
धन छीन लिया कर दीन दिया॥

(५)

बहु धूर्त रहे ठगते अब लौं ।
नहिं ठाकुर आप मिले जब लौं ॥
अब ठाकुर केवल जान तुम्हें ।
धन याचन दो प्रभु ! दान हमें ॥

(६)

परमेश्वर विश्व बनावत है ।
जन अर्थिन भोग भुगावत है ॥
जप से तप से नर ध्यावत है ।
पदवी ध्रुव की तब पावत है ॥

(७)

तुम तो धन लोक अलोक परम् ।
परमानन्द नित्य अनादि चिरम् ॥
परिपूर्ण अखण्ड बतावत हो ।
धन देय धनेश बनावत हो ॥

(८)

नहिं केवल आप धनेश करें ।
बहु विश्व अधीश परेश करें ॥
अपरोक्ष खड़े तुम हो फलदा ।
अज ईश्वर इष्ट परोक्ष सदा ॥

रंग श्याम रंग में।

(१)

अरे अचेत! चेत जा, न जा कभी कुसंग में।
सके न त्याग संग तो, हमेश जा सुसंग में॥
न द्रव्य में, न दार में, न राग राख अंग में।
समस्त रंग छोड़, एक रंग श्याम रंग में॥

(२)

'कुरोग भोग जान' सर्व भोग दूर त्याग रे।
न खान में, न पान में, न अन्य माँहि लाग रे॥
यथा गजेंद्र लोट लोट, न्हाय देव गंग में।
समस्त विश्व भूल, नित्य रंग श्याम रंग में॥

(३)

न नृत्य में, न गान में, न ताल में, न तान में।
न राग राख अश्व में, न नाग में, न यान में॥
न पुष्प में, न माल में, न राग हो पलंग में।
विसार सर्व भोग, रोग, रंग श्याम रंग में॥

(४)

न धर्म में, न अर्थ में, न काम राख काम में।
न ऋद्धि में, न सिद्धि में, न कीर्ति में, न नाम में॥
विरक्त भक्त मत्त नित्य कृष्ण भक्ति भंग में।
अशेष वासना मिटाय, रंग श्याम रंग में॥

(५)

उचार राम नाम रे, वृथा न वाक्य बोल रे।
पधार साधु संग में, यहां, वहां न डोल रे॥
सुना चरित्र कृष्ण नित्य, भक्ति की उमंग में।
न साख्य में, न योग मांहि, रंग श्याम रंग में॥

(६)

न भेद लेश है यहीं, चिदात्म एक तत्त्व है।
न शोक है, न मोह है, सुखात्म सर्व विश्व है॥
न भेद देख विप्र, गाय, श्वान में, कुरंग में।
असंग निर्विकल्प नित्य, रंग श्याम रंग में॥

(७)

जहां समस्त रंग होंय, श्वेत सो प्रसिद्ध है।
जहां न कोई रंग होंय, श्याम रंग सिद्ध है॥
समस्त मांहि कृष्ण देख, व्याघ्र में, भुजंग में।
विसार सर्व रूप रंग, रंग श्याम रंग में॥

(८)

अशुद्ध चित्त भ्रान्ति से, अनेक रंग देखता।
विशुद्ध चित्त सर्व मांहि एक तत्त्व पेखता॥
सुचित्त! त्याग मूढ़ता, न भूल भेद भंग में।
अपक्व रंग त्याग सर्व, रंग श्याम रंग में॥

अवश्य हाथ आयगा।

(१)

असन्त संग कीजिये, असंत ही कहाइये।
महन्त सन्त संग से, सुसंत होय जाइये॥
असत्य नित्य ध्याइये, असत्य में समाइये।
अनन्त देव पूज के, अनन्त क्या न पाइये?

(२)

महान सेठ सेवता महान मान पाय है।
न सोच होय है कभी, न रंज पास आय है॥
सुखीहि प्रातः में उठे, सुखीहि रात सोय है।
भजे सदांहि ईश जो, सुखारि क्या न होय है॥

(३)

सुनीति, शास्त्र जान भूप राज को संभालता।
स्व शत्रु सर्व जीतता, प्रजा सदैव पालता॥
अमोघ शक्ति ईश पूज, शान्ति क्या न पायगा।
प्रमाद आदि शत्रु जीत, दूर ना भगायगा॥

(४)

मनुष्य चाकरी किये अवश्य दाम देय है।
मजूरि के दिये बिना न कोई काम लेय है॥
मनुष्य देय दाम तो महेश क्यों न देयगा।
अवश्य देयगा सही न मुफ्त काम लेयगा॥

(५)

निकाल शत्रु काम आदि, दूर फैंक दीजिये।
निवास ईश का तहां विशुद्ध होय कीजिये॥
न काम पास आयगा, न क्रोध ही सतायगा।
सदा विराजमान ईश चित्त मांहि पायगा॥

(६)

न तुच्छ भोग चाहि चाहि, तुच्छ चित्त कीजिये।
करे न भूप चाकरी, विचार खूब लीजिये॥
विकार को निकार बाह्य, स्वच्छ हो जाइये।
स्वचित्त मांहि ईश दर्श, क्यों न आप पाइये॥

(७)

विवेक अग्नि बाल के कुवासना जलाइये।
विराग की लगाय फूँक, राख को उड़ाइये॥
स्वयं प्रकाश दिव्य देव, दीख साफ जायगा।
जगत् पिशाच का पता कहीं न लेश पायगा॥

(८)

विकार जन्म लेय है, विकार ही मरा करे।
अखण्ड निर्विकार तू, न जन्म लेय ना मरे॥
स्वराज्य आपका यही, अवश्य हाथ आयगा।
न कष्ट कोई भी रहे, स्वरूप में समायगा॥

संत संग।

(१)

अनेक जन्म, पाप पुंज, संत संग धोय है।
असत्य से विराग, सत्य मांहि राग होय है॥
हजार माहिं कोय एक संग संत पाय है।
अनेक जन्म पुण्य से सुसंग हाथ आय है॥

(२)

असंख्य द्रव्य, धान्य, धाम, पुत्र, पौत्र दार हो।
न शान्ति होय लेश भी, कुटुम्ब भी अपार हो॥
सिवाय संत संग के न शान्ति हाथ आय है।
वही पिलाय सत् सुधा मृषा तृषा वुझाय है॥

(३)

फिरे हमेश काल चक्र ऊंच नीच जाय है।
विचित्र योनि में भ्रमाय कष्ट दे सताय है॥
विना महंत, संत, संग जन्म, मृत्यु जाय ना।
जहां सुधी मरे जिये, अखंड शान्ति पाय ना॥

(४)

कुमार हो, जवान होय, वृद्ध होय जाय है।
तहां तहां तपा करे, अनेक दुःख पाय है॥
सुसंत संग शान्ति दे, अशान्ति कूं मिटाय है।
मिलाय नित्य ईश मांहि, नित्य ही बनाय है॥

(५)

नदी सुशुष्क होय, पहाड़ टूट जाय है।
धनी दरिद्र देश भी, विदेश होय जाय है॥
मरें समस्त जन्मि जन्मि, संत एक ना मरे।
कृपा सुसंत पाय धीर, जन्म मृत्यु से तरे॥

(६)

सुवर्ण वृष्टि नित्य होय, रत्न पूर्ण हो मही।
भले हि राम राज्य होय, हों विभूति सर्व ही॥
न डाकू हो, न चोर, खोल द्वार सोय जाइये।
न संत संग के समान किन्तु, शान्ति पाइये॥

(७)

अथाह भी समुद्र शुष्क, होय है न ज्वारि ते।
अडिग सूर्य चन्द्र आदि काल पाय टूटते॥
समस्त भूत धारिणी मही विनष्ट होय है।
जिसे मिला सुसंत सो, कभी न नष्ट होय है॥

(८)

न एकहू जगत्पदार्थ जन्म नाश हीन है।
सभी मरा जिया करें, दुःखी, दरिद्र, दीन है॥
मरे नहीं जीये सदा, यहां न लौट आय है।
अनन्त संत संग से, अनन्त होय जाय है॥

मैं कौन हूँ।

(१)

असँग हूँ, मैं अनँग हूं, मैं अमर पुरी का वासी।
जीव भाव धारण कर लीन्हा, इससे हुआ उदासी॥
जन्म मरण से मुक्त सदा हूं, नहीं आत्रि, नहीं व्याधी।
मोह नींद जबसे है आयी, तब से लगी उदासी॥

(२)

वँध्यासुत यह जग है मिथ्या, भ्रम से देय दिखाई।
स्वप्न समान दृश्य यह सारा, छन मांहि नशाई॥
तृष्णा काली नागिन, विषधर, डसकर सबको खाई।
वह ही इससे बचे मनोहर, गुरू शरण में जो जाई॥

(३)

क्यों विलंब करता है प्यारे, ले गुरू शरण सुहाई।
ऋषि, मुनि, संत, येती, योगी जन सबके ही मन भाई॥
गुरू शरण जिस जिसने लीन्ही, मुक्ति उसीने पाई।
विद्या मत मत्सर में भूले, सो रौरव भटकाई॥

(४)

घर बैठे गुरू दर्शन दीन्हे, भगवत हुए सहाई।
सुना सुना 'वेदान्त केशरी', ईश्वर दिया दिखाई॥
आत्मा धन जो लूट लिया था, दश चोरों ने आई।
सद्गुरू ने सो तुरत दिलाया, दीन्हा सेठ बनाई॥

(५)

ऐसे गुरू जो देय बिसारी, उस सम अज्ञ न कोई।
पापी, दुष्ट, प्रमादी, स्वार्थी, शठ कहलावे सोई॥
गंगा तट पर गुरूजी बैठे, अशरण सरण सुहाई।
कब तुम लोगे शरण मनोहर, भवनाशक सुखदाई॥

(६)

त्यागो प्यारे, जल्दी त्यागो, विश्व प्रीति दुःखदाई।
धावो धावो देर करो मत, आयुष बीती जाई॥
देर करोगे तो रोवोगे, कर मल मल पछताई।
भ्राता दारा, सुत, परिवारा, कोई हो न सहाई॥

(७)

प्राण अचानक देह त्याग कर, जब परलोक सिधाई।
जला अग्नि में भस्म करेंगे, प्यारे बांधव भाई॥
आये प्यारे यहां अकेले, जाओगे इकलाई।
मोह फांस झटपट से काटो, गुरू चरणन लिपटाई॥

(८)

अटल राज्य सुखमय पाओगे, शोक, मोह, भय जाई।
करो शीघ्रता देर करो ना, रहो ईश शरणाई॥
भजलो राम, रामगुण गाओ, रामरूप लव लाई।
वेद शास्त्र का सार यही है, महिमा संतन गाई॥

गुरू स्तुति

(१)

जिसके बिना न ज्ञान, ध्यान भक्ति फलती है।
जिसके बिना न युक्ति, मुक्ति की कुछ चलती है॥
पढ़े शास्त्र भी लाख, खाक पर काम न आते।
होता नेक न बोध, शोध सब पथ मर जाते॥
पर जिसकी टुक ही कृपा, सब क्लेशों को टालती।
महा मोह, तम पुञ्ज में, प्रखर ज्ञान कर डालती॥

(२)

सरल चित्त, गतमान, दान विद्या का करते।
'हटा मोह अज्ञान' मान मद जन का हरते॥
प्रकटाते स्वस्वरूप, रूप तम का दिखलाके।
बिना हेतु, 'जगहेतु' सेतु भव सिन्धु बनाके॥
हम भी सुनते नित्य, पर हटता तब अज्ञान है।
निश्चल श्रद्धा, गुरू कृपा बिना, हुआ क्या ज्ञान है॥

(३)

जे हैं शंकर रूप, भूप सब जग के सच्चे।
जगत ज्ञान मद मत्त, दत्त जिन सन्मुख बच्चे॥
निर्विकार, अक्षोभ, क्षोभ जन का हर लेते।
हो करके अति सदय, अभय जग को कर देते॥
यम के भी जो काल हैं, संसृति सागर सेतु हैं।
हम न जानते मोह वश, प्रकटे प्रभु जग हेतु हैं॥

(४)

नित ही भ्रम का सर्प, दर्प से सब को डसता।
क्लीव नर पर मिटता जीव, क्लीव उठ कमर न कसता॥
दुःख में ही सुख जान, मान वश शरण न आता।
नहीं कहीं भी शान्ति, भ्रान्ति मय जग में पाता॥
जब गुरू के शरण, रहता लेश न क्लेश है।
भ्रम मिटता विश्वास से, सुन कर गुरू उपदेश है॥

(५)

जो है नित सम चित्त, बित्त भर जिन को जानें।
जिन निज श्रद्धा अनुरूप, रूप हम जिन का मानें॥
परम ज्ञान के सिन्धु, विन्दु कर मान रहे हम।
इससे मिटे न पाप, ताप त्रय ताप रहे हम॥
बस गुरू को पहचानते, लक्ष्य तुरत मिल जायगा।
क्षण भर के उपदेश से, सब परदा खुल जायगा॥

(६)

आओ बस हम सभी, अभी मिल गुरू गुण गावें।
कर श्रद्धा विश्वास शरण में, गुरू की जावें॥
हटे मोह अज्ञान, ज्ञान का भानु प्रकाशे।
अन्तर तम के सुप्त, गुप्त निधि पूर्ण प्रकाशे॥
मल विक्षेप औ आवरण, गुरू कृपा पा तोड़ दे।
भोला! शुद्ध स्वरूप से, चटपट नाता जोड़ दे॥

बोध, वैराग्य और उपराम ।

(१)

कहते किसको बोध, तत्त्व सम्यक् पहिचाने ।
सत् को जाने सत्य, असत् को मिथ्या जाने ॥
कैसे होवे बोध, ब्रह्म विद्या सुन लीजे ।
सुनकर कीजे मनन, ध्यान फिर सादर कीजे ॥
फल क्या होवे बोधका, आत्मा बुद्धी भिन्न हो ।
रहे अन्ततक भिन्नही, नांही कभी अभिन्न हो ॥

(२)

कहें किसे विराग, राग भोगों का तजना ।
प्राप्त होय जो भोग, उन्हें भी नाहीं भजना ॥
कैसे होय विराग, दोष देखे भोगन में ।
जितने भी हैं भोग, रोग करते तन मन में ॥
क्या फल होय विरागका, भोगों मांहि अदीनता ।
सदा रहे मन पी नहीं कभी, न हो मन दीनता ॥

(३)

कहें किसे उपराम, जाय कैसे पहिचाना ।
मन का होय निरोध, तत्त्व मांहि टिकजाना ॥
कैसे हो उपराम, यमादिक पांचों पीजे ।
करो धारणा ध्यान, समाधी में मन दीजे ॥
फल क्या है उपराम का, क्षय होवे व्यवहारका ।
ब्रह्मलीन हो चित्त, कुछ कार्य न हो संसारका ॥

(४)

तत्त्व बोध है मुख्य, मोक्ष का साक्षात् दायक।
विराग अरू उपराम, बोध के दोय सहायक॥
तीनों होवें साथ, पुण्य यदि होवे पूरा।
कहीं कहीं पे कोय, पाप से रहे अधूरा॥
पिछले दो हों सिद्ध जो, बोध एक रुक जाय है।
तो ना होवे मुक्ति सो, उच्चलोक में जाय है॥

(५)

बोध होय यदि पक्क, अन्य दो नाहीं पकते।
तो हो निश्चय मोक्ष इष्ट, दुःख नाहीं रूकते॥
है विराग का अन्त, तीन गुण मांहि न ममता।
पक्का जानो बोध, देह सम 'ब्रह्म अहन्ता'॥
जैसे सोते पुरुष को, जगत् जाय सब भूल जब।
सीमा यह उपराम की, जान लेय नर चतुर तब॥

(६)

बोध यदपि है एक, भिन्न प्रारब्ध बना है।
जैसा है प्रारब्ध प्रज्ञ १ वर्ते तेसा है॥
कोई मांगे भीख, राज्य कोई है करता।
कोई दे उपदेश, ध्यान कोई है धरता॥
भोला ! तज संदेह दे, भेद न किंचित मान रे।
सबमें आत्मा देखरे, आत्मा में सब जान रे॥

काम।

(१)

बहु योनिन जन्म असंख्य लहे।
तहं भोगत भोग अनेक रहे॥
दिन ही दिन भोगत आयु गई।
अब लों नहिं चाह नि_व भई॥

(२)

हम भोगत भोग कहैं मन में।
उलटे पर भोगत भोग हमें॥
यह भो। हमें वितु सत्त्व करे।
तनु तेज हरें, पुनि प्राण हरें॥

(३)

हम कूकर ज्यों वश काम फिरें।
नित काम परायण धर्म करें॥
सब वृद्ध भये इक काम युवा।
जब देखत दीखत नित्य नवा॥

(४)

जय तोहि नहीं करि कोय सके।
सब कूं करि ँठ हराय सके॥
जिन जीतत तू, सब ँठ सही।
तुहि जीतत जो नर मर्द वही॥

(५)

मद नारि तुझे वध भस्म किया।
पुनि व्यापक हो वरदान दिया॥
फिर मोहित तू करि दीन उन्हें।
तब भूल मिटावत शान्ति तिन्हें॥

(६)

शठ काम तुझे विधि जन्म दिया।
तिन मांहि महा अपमान किया॥
जब है अशरीर बली इतना।
सशरीर न जान बली कितना ?

(७)

बड़ मन्मथ जादु भरा तुझमें।
क्षण मांहि बनावत अन्ध हमें॥
बलवीरन कूँ बलहीन करे।
नर कूँ युवती वश दीन करे॥

(८)

नहिं जीत, न हार तुझे जग में।
प्रति बन्धक तू शम के मग में॥
सुर, दानव ऊपर चोट करे।
वन वासि मुनी तप भ्रष्ट करे॥

(९)

रति नाथ ! तुही शुभ नाशक है।
अघ पोषक, दुःख विकासक है॥
जहँ होवत तू तहँ राम कहां ?
सुख शान्ति न आवन देत तहां॥

(१०)

तव शक्ति महा भव कारक है।
शुभ हारक जीवन मारक है॥
प्रमात्म अभेद प्रबोध विना।
तव नाश समूल न हो मदना॥

जय सद्गुरू देवन देव परम।

(१)

जय सद्गुरू देवन देव वरं।
निज भक्तन रक्षण, देह धरम॥
पर दुःख हरं, सुख शांति करं।
निरूपाधि, निरामय, दिव्य परम्॥

(२)

जय काल अबाधित शान्ति मयं।
जन पोषक शोषक ताप त्रयम्॥
भय भंजन देत परं अभयं।
मन रंजन भाविक भाव प्रियम्॥

(३)

ममतादिक दोष नशावत हैं।
शम आदिक भाव सिखावत हैं॥
जग जीवन पाप निवारत हैं।
भव सागर पार उतारत हैं॥

(४)

कहुं धर्म बतावत ध्यान कहीं।
कहुं भक्ति सिखावत ज्ञान कहीं॥
उपदेशत नेम रुप्रेम तुम्हीं।
करते प्रभु योग रुक्षेम तुम्हीं॥

(५)

मन इन्द्रिय जाहि न जान सके।
नहिं बुद्धि जिसे पहिचान सके॥
नहिं शब्द जहां पर जाय सके।
बिनु सद्गुरू कौन लखाय सके॥

(६)

नहिं ध्यान न ध्यातृ न ध्येय जहां।
नहिं ज्ञातृ न ज्ञान न ज्ञेय जहां॥
नहिं देश न काल न वस्तु तहां।
बिन सद्गुरू को पहुँचाय वहां॥

(७)

नहिं रूप न लक्षण ही जिसका ।
नहिं नाम न धाम कहीं जिसका ॥
नहिं सत्य असत्य कहाय सके ।
गुरूदेव हि ताहि जनाय सके ॥

(८)

गुरू कीन कृपा भव त्रास गई ।
मिट भूख गई छुट प्यास गई ॥
नहिं काम रहा नहिं कर्म रहा ।
नहिं मृत्यु रहा नहिं जन्म रहा ॥

(९)

मण राग गया, हट द्वेष गया ।
अघ चूर्ण भया, अणु पूर्ण भया ॥
नहिं द्वैत रहा, सम एक भया ।
भ्रम भेद मिटा, मम, तोर गया ॥

(१०)

नहिं मैं नहिं तू नहिं अन्य रहा ।
गुरू शाश्वत आप अनन्य रहा ॥
गुरू सेवत ते नर धन्य यहां ।
तिनकूं नहिं दुःख यहां न वहां ॥

॥ ॐ ॥

मन, कछुवा दिन की सुधि राख !
जा दिन तेरे तनु-दुकान की उठि जै हैं सब साख ॥

इन्द्रिय सकल न मानहिं अनुमति छोड़ चलैं सब साथ ।
सुत, परिवार, नारि नहिं कोऊ पूछैं दुःख की गाथ ॥
वारन्ट लै जमदूत आई तोहि पकरि बाँधि लै जाय ।
कोउ न बनै सहाय काल तिहि देखत ही रहि जाय ॥
जमके कारागार नरक मँह अतिसय संकट पाय ।
बार-बार करनी सुमिरनकरि सिर धुनि-धुनि पछिताय ॥
जो यहि दुखतें उबरो चाहै, तो हरि-नाम पुकार ।
राम-नाम ते मिटैं सकल दुख, मिलै परम सुख-सार ॥

मिलने का पता :
देहाती पुस्तक भण्डार,
चावड़ी बाजार, (बड़शाहबूला)
देहली–६

केवल टाइटिल पेज रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस, २३ दरियागंज, दिल्ली